

संपादकीय

जब पिता की मौत भी बच्चों को नहीं बुला पाती

किसी पिता की सबसे बड़ी उम्मीद क्या होती है? यही कि जीवन के अंतिम पड़ाव पर उसके अपने उसके पास खड़े होंगे। मृत्यु के बाद अंतिम बार चेहरा देखेंगे और कंधा देकर विदा करेंगे। भोपाल के एक वृद्धाश्रम में 70 वर्षीय घनश्याम की मौत के बाद को हुआ, वह इस सामान्य मानवीय अपेक्षा को ही कठघरे में खड़ा करता है। जिस व्यक्ति ने जिंदगी भर मेहनत कर चार बच्चों को पाला, करोबार किया और अपनी कमाई बच्चों के बीच बांट दी, उसकी मौत पर बेटे-बेटियां अंतिम दर्शन के लिए भी नहीं पहुंचे। परिवार ने आश्रम से अंतिम संस्कार करने और मृत्यु प्रमाण पत्र प्रप्तवाने को कहा। इससे अधिक पीड़ादायक स्थिति क्या हो सकती है?

इस घटना को केवल बच्चों की संवेदनहीनता कहकर आगे बढ़ जाना आसान है, लेकिन सवाल इससे कहीं बड़ा है। आखिर माता-पिता का रिश्ता लेन-देन की कसौटी पर कैसे आ गया? बेटों का यह कहना कि पिता ने संपत्ति बेटों को दे दी, इसलिए वह अंतिम संस्कार के लिए क्यों आए, और बेटों का कहना कि उन्होंने हमारे लिए किया ही क्या है, उस सोच का संकेत है जिसमें रिश्तों का मूल्य भावनाओं से नहीं, फायदे से तय होने लगा है।

माता-पिता ने बच्चों के लिए क्या किया, इसका हिसाब अगर मृत्यु के बाद लगाया जाने लगे तो परिवार संस्था का अर्थ ही बदल जाएगा। बच्चे छोटे होते हैं तब माता-पिता उनकी जरूरतें पूरी करते हैं। वे यह हिसाब नहीं रखते कि बच्चे ने उनके लिए क्या किया। बच्चों की पढ़ाई और भविष्य की चिंता करना किसी अनुबंध का हिस्सा नहीं होता। फिर बुढ़ापे में उसी रिश्ते को लाभ-हानि के खाते में डाल देना सामाजिक चेतना के कमजोर पड़ने का प्रमाण है।

संयुक्त परिवार टूटे हैं और कई बार बच्चों के लिए साथ रहना संभव नहीं होता। वृद्धाश्रम में रहना अपने आप में गलत नहीं है। समस्या तब है जब वृद्धाश्रम परिवार की जिम्मेदारी से बचने का रास्ता बन जाए। माता-पिता को वहां छोड़ देना, उनका हाल तक न पूछना और बीमारी या मृत्यु के समय भी न पहुंचना जीवनशैली नहीं, संवेदनहीनता है।

आश्रम संचालिका के अनुसार कई बुजुर्गों के पास अपने परिवार का सही पता और जरूरी दस्तावेज तक नहीं होते। कभी वे भटककर आश्रम पहुंचते हैं, कभी बच्चे उनसे दूरी बना लेते हैं। यह केवल भावनात्मक, सामाजिक समस्या थी है।

कानून माता-पिता के भरण-पोषण की जिम्मेदारी तय कर सकता है, लेकिन प्रेम और सम्मान का कानून नहीं बनाया जा सकता। आज समाज को यह समझना होगा कि बुजुर्ग बोझ नहीं हैं। उन्होंने हमारे लिए क्या किया, यह पूछने से पहले हमें खुद से पूछना चाहिए कि हमने उनके अंतिम वर्षों के लिए क्या बचाकर रखा है – संपत्ति नहीं, समय, सम्मान और अपनापन।

घनश्याम की अंतिम यात्रा में उनके बच्चे नहीं पहुंचे, लेकिन उनकी कहानी समाज के सामने एक बड़ा प्रश्न छोड़ गई है। यदि जीवनभर साथ देने वाले पिता की मृत्यु भी बच्चों को घर से बाहर नहीं निकाल सकती, तो हमें विकास से पहले अपने भीतर बची संवेदना को चिंता करनी चाहिए।

आजकल

नवंबर में ट्रंप की ताकत का इम्तिहान

अमेरिका में नवंबर में होने वाले मिडटर्म चुनाव राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के लिए केवल कांग्रेस की सीटों का चुनाव नहीं, बल्कि उनके दूसरे कार्यकाल की दिशा तय करने वाला राजनीतिक जन्मत भी होंगे। मौजूदा सर्वे में रिपब्लिकन पार्टी की हार की 65 प्रतिशत संभावना बताई गई है। यदि ऐसा होता है तो ट्रंप राष्ट्रपति पद पर बने रहेंगे, लेकिन उनके फैसलों पर कांग्रेस का अंकुश बढ़ जाएगा।

अमेरिकी व्यवस्था में राष्ट्रपति शक्तिशाली जरूर है, लेकिन उनकी शक्तियां असंमित नहीं हैं। कांग्रेस कानून और बजट से जुड़े महत्वपूर्ण अधिकार रखती है। इसलिए रिपब्लिकन बहुमत खत्म होने पर ट्रंप को हर बड़े फैसले के लिए डेमोक्रेट सांसदों से समझौता करना पड़ सकता है। टैरिफ, इमिग्रेशन, वीजा और सैन्य खर्च जैसे मुद्दों पर ट्रंपका बढ़ना तय है।

ट्रंप के सामने सबसे बड़ी चुनौती अर्थव्यवस्था और महंगाई है। यदि किराने का सामान, पेट्रोल और दूसरी जरूरी चीजें महंगी होती हैं तो राष्ट्रपति की आर्थिक नीतियों का असर सीधे मतदाता की जेब पर दिखाई देता है। चुनाव में यही सबसे प्रभावी मुद्दा बन सकता है। इमिग्रेशन भी ट्रंप के लिए दोधारी तलवार है। 2024 में सख्त सीमा नीति उनकी बड़ी ताकत थी, लेकिन अब डिपॉजिटन और कठोर कार्रवाई को लेकर असंतोष के संकेत मिल रहे हैं। ईरान के साथ बढ़ता तनाव भी घरेलू राजनीति को प्रभावित कर सकता है। लंबा युद्ध और महंगा तेल अमेरिकी अर्थव्यवस्था पर दबाव डाल सकता है।

हालाँकि रिपब्लिकन हार को सीधे ट्रंप की सत्ता खत्म होने के रूप में देखना गलत होगा। महाभियोग भी आसान या स्वतः लागू होने वाली प्रक्रिया नहीं है। लेकिन कांग्रेस में बहुमत खोने का अर्थ इतना जरूर होगा कि ट्रंप की नीतियों को पहले जैसी आसानी से लागू करना मुश्किल होगा।

अमेरिकी लोकतंत्र का मूल आधार ही 'चेक एंड बैलेंस' है। नवंबर का चुनाव इसी व्यवस्था की परीक्षा है। सवाल केवल यह नहीं कि ट्रंप जीतेंगे या हारेंगे, बल्कि यह है कि अमेरिकी मतदाता राष्ट्रपति की ताकत के साथ चलना चाहते हैं या उस पर संस्थागत नियंत्रण भी चाहते हैं।

शहरों के बड़े अस्पतालों में इन दिनों

एक नई और चिंताजनक तस्वीर सामने आ रही है। बाहर से देखने पर सबसे सामान्य लगते हैं, लेकिन जांच के बाद पता चलता है कि आधे से ज्यादा बच्चे कुपोषण और विटामिन डी की कमी से जूझ रहे हैं। डॉक्टरों का कहना है कि यह समस्या अब केवल गरीब या ग्रामीण इलाकों तक सीमित नहीं रही, बल्कि शहरी मध्यम वर्ग के घरों तक पहुंच गई है। स्कूल जाने वाले बच्चों से लेकर डॉटे शिशुओं तक में पोषण की कमी के मामले तेजी से बढ़ रहे हैं। इसका सबसे बड़ा कारण जीवनशैली में बदलाव, धूप से दूरी और जंक फूड पर निर्भरता माना जा रहा है।

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण और अस्पतालों के अपने आंकड़े दोनों एक ही बात कह रहे हैं। शहरों में हर दूसरा बच्चा किसी न किसी पोषण संबंधी कमी का शिकार है। भोपाल के एक बड़े अस्पताल में किए गए अध्ययन में 91 प्रतिशत शहरी आबादी में विटामिन डी की कमी पाई गई। इनमें 49 प्रतिशत बच्चे थे। ग्रामीण क्षेत्र की तुलना में शहरों में यह आंकड़ा दोगुना है। 10 शहरों के 2428 स्कूली बच्चों पर हुए सर्वे में 49 प्रतिशत बच्चों में विटामिन डी की कमी मिली, 39 प्रतिशत में आयरन की कमी और 33 प्रतिशत में विटामिन बी12 की कमी पाई गई। डॉक्टरों का कहना है कि यह आंकड़े केवल बीमार बच्चों के हैं। अगर स्वस्थ बच्चों की भी जांच का जाए तो स्थिति और खराब मिल सकती है।

इस समस्या के पीछे सबसे बड़ी वजह बच्चों का धूप से दूर रहना है। पहले बच्चे सुबह स्कूल जाने से पहले धूप में खेलते थे,

सुबह आंख खुलते ही हाथ मोबाइल ढूंढता है, रात सोने से पहले भी आखिरी नजर स्क्रीन पर ही टिकती है। पूरे दिन में हम कितनी बार स्क्रीन देखते हैं, इसका हिसाब लगाना मुश्किल है। काम, पढ़ाई, मनोरंजन, दोस्ती, खरीदारी, सब कुछ अब एक छोटी सी स्क्रीन में सिमट गया है। सुविधा बहुत बढ़ी है, लेकिन इसके साथ एक चुपचाप बढ़ता हुआ खतरा भी आया है और वह है अधिक समय तक स्क्रीन पर रहने की लत। यह अब केवल व्यक्तिगत आदत नहीं, घर की समस्या बन गई है। बच्चे, बूढ़े, जवान सभी इस डिजिटल जाल में फंसेते जा रहे हैं और इसका असर शरीर, दिमाग और रिश्तों पर साफ दिखने लगा है।

सबसे पहले चोट आंखों पर पड़ती है। लगातार स्क्रीन देखने से आंखों में जलन, सूखापन, धुंधला दिखना और सिरदर्द जैसी समस्याएं हो सकती हैं। डॉक्टर इसे डिजिटल आई स्ट्रेन कहते हैं। बच्चों में भी आंखों पर बढ़ते दबाव को लेकर चिंता बढ़ रही है। रात को देर तक मोबाइल चलाने से नींद प्रभावित होती है। स्क्रीन की रोशनी मेलाटोनिन नामक हार्मोन के सामान्य स्नाव को प्रभावित कर सकती है, जो नींद के लिए जरूरी है। नींद पूरी न हो तो अगले दिन थकान, चिड़चिड़ापन और काम में मन न लगने की शिकायत आम हो जाती है।

शरीर भी स्क्रीन की गुलामी से बच नहीं पा रहा है। पहले बच्चे शाम होते ही मैदान में दौड़ते थे, अब वे कमरे में बैठकर ऑनलाइन गेम खेलते हैं। पहले लोग दोस्तों से मिलने जाते थे, अब वीडियो कॉल पर बात कर लेते हैं। शारीरिक गतिविधि कम होने से मोटापा और जीवनशैली से जुड़ी बीमारियों का खतरा बढ़ रहा है। लगातार झुककर बैठने से गर्दन और रीढ़ में दर्द होने लगा है, जिसे टेक नेक कहा जाता है। घंटों टाइपिंग और स्क्रीनिंग से हाथ और कलाई में भी दर्द हो सकता है। बच्चों के लिए यह स्थिति ज्यादा चिंताजनक है, क्योंकि उनके शारीरिक विकास के लिए खेलना और बाहर समय बिताना जरूरी है।

सबसे गहरा असर दिमाग और रिश्तों पर पड़ रहा है। अधिक स्क्रीन टाइम से ध्यान भटकने की समस्या बढ़ रही है। थोड़ी देर में नोटिफिकेशन चेक करने की आदत ने एकाग्रता को प्रभावित किया है। पढ़ाई और लंबे समय तक किसी काम पर ध्यान लगाना कठिन होता जा रहा है। सोशल मीडिया और शॉर्ट वीडियो की लगातार खपत दिमाग को बार-बार नए उत्तेजक कंटेंट की तलाश में रखती है। इसका असर डिजिटिडेशन, अकेलेपन और मानसिक तनाव के रूप में दिखाई दे सकता है। बच्चे असली दोस्तों से दूर होकर वर्चुअल दुनिया में ज्यादा समय बिता रहे हैं।

मध्य प्रदेश के रेलवे स्टेशनों पर हर दिन

हजारों लोग आते-जाते हैं। कुछ अपने गंतव्य तक पहुंच जाते हैं और कुछ ऐसे भी होते हैं, जो भटककर रह जाते हैं। जिनके पास न घर होता है, न ठिकाना, न खाने की व्यवस्था और न इलाज की सुविधा। मानसिक रूप से बीमार बुजुर्ग, नशे की गिरफ्त में आए युवा और घर से रूठकर निकले बच्चे अक्सर प्लेटफार्मों पर रात गुजारते हैं और धीरे-धीरे उनकी जिंदगी स्टेशन की बेंच और फुटपाथ बन जाती है। ऐसे ही बेसहारा और असहाय लोगों को सहारा देने के लिए जीआरपी ने ऑपरेशन हमदर्द चलाया और एक महीने के भीतर इस अभियान ने सैकड़ों टूटी हुई जिंदगियों को फिर से जोड़ने का काम किया।

एक जुलाई से 31 जुलाई तक चले इस विशेष अभियान के तहत भोपाल, इंदौर और जबलपुर रेल मंडल के प्रमुख स्टेशनों पर जीआरपी की टीमों ने गहन गश्त की और स्टेशनों, ट्रेनों, बेटिंग रूम और प्लेटफार्मों पर भटक रहे लोगों को चिन्हित किया। अभियान के आंकड़े बताते हैं कि कुल 2057 लोगों को मदद पहुंचाई गई। इनमें 1556 पुरुष, 404 महिलाएं, 39 बालक-बालिकाएं और 2 ट्रांसजेंडर शामिल थे। इन सभी को अलग-अलग श्रेणियों में रखकर मदद दी गई। 159 लोगों को उनके परिजनों से मिलाया गया, 39 लोगों को, जिनके पास जाने की कोई जगह नहीं थी, शेल्टर होम और रैन बसेरों में भेजा गया और 1790 लोगों को समझाइश देकर उनके घर भेजा गया या उनके परिजनों को सूचना देकर बुलाया गया।

इस अभियान की सबसे बड़ी खासियत यह थी कि इसमें केवल आंकड़ों पर काम नहीं हुआ, बल्कि हर व्यक्ति को कहानी को समझा गया। टीमों ने देखा कि बहुत से लोग मानसिक बीमारी के कारण घर से निकल आए हैं और अपना नाम-पता तक नहीं बता पा रहे हैं। कुछ बुजुर्ग ऐसे थे, जिन्हें बच्चे संभाल नहीं पाए और वे घर से निकलकर स्टेशन पहुंच गए। कुछ युवा नशे और बेरोजगारी के कारण घर छोड़कर आ गए और कुछ महिलाएं घरेलू हिंसा से परेशान होकर ट्रेन पकड़कर निकल पड़ीं। जीआरपी ने इन सभी की

नईदुनिया

मोबाइल की रोशनी में धुंधली होती जिंदगी



साइबर बुलिंग, फर्जी खबरें और नकारात्मक कंटेंट ने इस तनाव को और बढ़ा दिया है। बड़ों की स्थिति भी अलग नहीं है। ऑफिस का काम अब घर तक आ गया है। लैपटॉप बंद नहीं होता और रात तक मेल और मैसेज का जवाब देना पड़ता है। इससे काम और निजी जीवन के बीच की सीमा कमजोर हो गई है। परिवार के साथ बैठकर खाने के समय भी सब अपने फोन में व्यस्त रहते हैं। पति-पत्नी और बच्चे एक कमरे में होते हुए भी अलग-अलग दुनिया में होते हैं। लगातार अलर्ट और मैसेज चेक करने से दिमाग को आराम नहीं मिलता और तनाव तथा बर्नआउट बढ़ सकता है।

इस दलदल से निकला कैसे जाए? पूरी तरह स्क्रीन छोड़ना संभव नहीं है, क्योंकि नौकरी, पढ़ाई और बैंकिंग जैसी जरूरी गतिविधियां ऑनलाइन हैं। जरूरत स्क्रीन छोड़ने की नहीं, उससे इस्तेमाल को नियंत्रित करने की है। सबसे पहला कदम है समय तय करना। बच्चों के स्क्रीन टाइम की स्पष्ट सीमा होनी चाहिए और पढ़ाई तथा जरूरी काम को मनोरंजन से अलग रखा जाना चाहिए। बड़ों को भी काम के बाद मनोरंजन के लिए स्क्रीन पर बिताए जाने वाले समय को सीमित करना चाहिए।

आंखों के लिए 20-20-20 का नियम अपनाया

ऑपरेशन हमदर्द बना बेसहारों का सहारा

कार्डसलिंग की, उन्हें भोजन, पानी और जरूरी दवाएं उपलब्ध कराई और फिर उनकी स्थिति के अनुसार आगे की व्यवस्था की।

159 लोगों को परिजनों से मिलवाना आसान नहीं था, क्योंकि इनमें से अधिकांश अपना पता नहीं बता पा रहे थे। ऐसे में जीआरपी ने तकनीक का सहारा लिया। फोटो और वीडियो सोशल मीडिया पर डाले गए, स्थानीय अखबारों और टीवी चैनलों के माध्यम से अपील की गई और अन्य राज्यों की पुलिस से भी संपर्क किया गया। इस मेहनत का नतीजा यह निकला कि बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और महाराष्ट्र तक से परिजन भोपाल और इंदौर पहुंचे और अपने अपनों को लेकर गए। कई परिवारों के लिए यह पल भावुक कर देने वाला था। वर्षों बाद अपने लापता सदस्य को देखकर उनकी आंखों में आंसू थे और उन्होंने जीआरपी का खुलकर धन्यवाद किया।

39 लोगों को शेल्टर होम भेजने का निर्णय भी बहुत सोच-समझकर लिया गया। इनमें वे लोग शामिल थे, जिनका कोई घर नहीं था या जिनके परिजन उन्हें लेने से इनकार कर रहे थे। इन लोगों के लिए शेल्टर होम में रहने, खाने और इलाज की व्यवस्था की गई। साथ ही उन्हें कोशल प्रशिक्षण देने की योजना भी बनाई गई, ताकि वे आगे चलकर आत्मनिर्भर बन सकें। सामाजिक संस्थाओं ने इस काम में जीआरपी का पूरा साथ दिया और कई स्वयंसेवी संगठनों ने आगे आकर इन लोगों के पुनर्वास का जिम्मा लिया।

सबसे बड़ी संख्या 1790 लोगों की थी, जिन्हें समझाइश देकर घर भेजा गया। इनमें ज्यादातर ऐसे लोग थे, जो किसी छोटी बात पर नाराज होकर घर से निकले थे या काम की तलाश में भटकते हुए स्टेशन पहुंच गए थे। जीआरपी की टीमों ने उनसे घंटों बात की, उनकी समस्या सुनी और उन्हें समझाया कि घर से दूर रहने से समस्या का समाधान नहीं होता। कई मामलों में टीम ने उनके घर फोन करके परिजनों को

जा सकता है। हर 20 मिनट में 20 सेकंड के लिए करीब 20 फीट दूर देखें। हर एक घंटे में कुछ मिनट उठकर टहलें, हाथ-पैर स्ट्रेच करें और पानी पिएं। इससे शरीर की जकड़न कम होगी। स्क्रीन की ब्राइटनेस बहुत अधिक न रखें, अक्षरों का आकार जरूरत के अनुसार बढ़ा रखें और स्क्रीन को आंखों से उचित दूरी पर रखें। फोन में नाइट मोड या ब्लू लाइट फिल्टर का इस्तेमाल भी किया जा सकता है।

घर में स्क्रीन फ्री जोन बनाना जरूरी है। डाइनिंग टेबल और बेडरूम में मोबाइल ले जाने की आदत खत्म करनी चाहिए। खाने के समय परिवार से बातचीत हो और सोने से पहले कुछ समय गैजेट से दूरी रखी जाए। बच्चों के स्टडी टेबल पर मोबाइल न रखें, ताकि पढ़ाई में ध्यान लगा रहे। अनावश्यक नोटिफिकेशन बंद करना भी उपयोगी है, क्योंकि हर कुछ मिनट में आने वाला अलर्ट ध्यान भटकता है।

असली दुनिया को वापस लाना होगा। बच्चों को पार्क में ले जाएं, खेल के लिए प्रोत्साहित करें, साइकिल चलवाएं और दोस्तों से मिलने का अवसर दें। स्कूलों में खेल और कला को पढ़ाई जितना ही महत्व मिलना चाहिए। बड़ों को भी सुबह-शाम वॉक, योग और व्यायाम के लिए समय निकालना चाहिए। शरीर सक्रिय रहेगा तो दिमाग भी बेहतर तरीके से

बुलाया और बीच-बचाव करके उन्हें वापस भेजा। इस प्रक्रिया में धैर्य और संवेदनशीलता की सबसे ज्यादा जरूरत थी और जीआरपी के जवानों ने यह जिम्मेदारी बखूबी निभाई।

ऑपरेशन हमदर्द की सफलता के पीछे जीआरपी के वरिष्ठ अधिकारियों के दूरदर्शिता भी थी। भोपाल के पुलिस आयुक्त हरिश राय और अन्य वरिष्ठ अधिकारियों ने स्वयं स्टेशनों का दौरा किया और जवानों का हौसला बढ़ाया। भोपाल की महापौर मालती राय ने भी इस अभियान की सराहना की और कहा कि शहर की जिम्मेदारी केवल सरकार की नहीं है, बल्कि समाज की भी है। उन्होंने कहा कि 2047 तक विकसित भारत का सपना तभी पूरा होगा, जब हम समाज के सबसे कमजोर वर्ग का ध्यान रखेंगे। जब तक कोई भी व्यक्ति भूखा या बेसहारा रहेगा, तब तक हमारा विकास अधूरा है।

इस अभियान से एक और महत्वपूर्ण बात सामने आई। रेलवे स्टेशन समाज का आईना हैं। यहां हमें समाज की हर बीमारी दिखाई देती है। गरीबी, बेरोजगारी, मानसिक बीमारी, घरेलू हिंसा और टूटते हुए परिवार, सभी कुछ यहां एक साथ दिखाई देते हैं। इसलिए केवल पुलिस के भरोसे इस समस्या का समाधान नहीं हो सकता। इसके लिए समाज को भी आगे आना होगा। स्कूलों, कॉलेजों और मोहल्लों में जागरूकता अभियान चलाने होंगे, ताकि लोग मानसिक बीमारी को कलंक न समझें और समय रहते मदद लें। परिवारों में संवाद बढ़ाना होगा, ताकि बच्चे और बुजुर्ग घर से रूठकर न निकलें।

ऑपरेशन हमदर्द जैसे अभियान को नियमित रूप से चलाया जाना चाहिए और इसे केवल एक महीने तक सीमित नहीं रखना चाहिए। स्टेशनों पर स्थायी हेल्प डेस्क बनाई जाएं, जहां कोई भी व्यक्ति मदद मांग सके। स्वयंसेवकों की टीम बनाई जाए, जो रोजाना गश्त करे और तकनीक का अधिक से अधिक उपयोग किया जाए। फेस रिकग्निशन और आधार

काम करेगा।

डिजिटल डिटॉक्स के लिए सप्ताह में कुछ घंटे या एक दिन स्क्रीन से दूरी बनाने का प्रयास किया जा सकता है। उस समय परिवार के साथ खाना बनाएं, किताब पढ़ें, खेलें, बातचीत करें या बाहर घूमें। इससे यह समझने में मदद मिलेगी कि मनोरंजन और संवाद के लिए स्क्रीन ही एकमात्र माध्यम नहीं है। महीने में एक बार कुछ घंटों के लिए फोन से पूरी तरह दूर रहना भी अपनी आदतों को समझने का अच्छा तरीका हो सकता है।

इस लड़ाई में माता-पिता और शिक्षक सबसे बड़ी ताकत हैं। बच्चों को छोटी उम्र से समझाना होगा कि इंटरनेट पर मौजूद हर जानकारी सच नहीं होती और तकनीक का संतुलित इस्तेमाल जरूरी है। माता-पिता को खुद उदाहरण बनना होगा। अगर बड़े हर समय फोन में व्यस्त रहेंगे तो बच्चों से संयम की उम्मीद कैसे की जा सकती है? स्कूलों में डिजिटल स्वास्थ्य और सुरक्षित इंटरनेट उपयोग के बारे में भी जागरूकता बढ़ाई जानी चाहिए। सरकार और कंपनियों की भी जिम्मेदारी है। सोशल मीडिया कंपनियों को बच्चों के लिए बेहतर प्रैक्टिस और संवाद के लिए स्क्रीन ही एकमात्र माध्यम नहीं है। महीने में एक बार कुछ घंटों के लिए फोन से पूरी तरह दूर रहना भी अपनी आदतों को समझने का अच्छा तरीका हो सकता है।

स्क्रीन बुरी नहीं है, गलत है उसका गलत और जरूरत से ज्यादा इस्तेमाल। अगर हम स्क्रीन को अपना मालिक बना लेंगे तो वह हमारी जिंदगी पर हावी हो जाएगी, लेकिन अगर उसे औजार की तरह इस्तेमाल करेंगे तो वह जिंदगी आसान बनाएगी। संतुलन ही असली कुंजी है। जरूरत के लिए स्क्रीन का उपयोग करें, मनोरंजन के लिए सीमित करें और लत को जीवन का हिस्सा न बनने दें।

आज से ही शुरुआत की जा सकती है। अपना स्क्रीन टाइम चेक करें, उसे धीरे-धीरे कम करने का लक्ष्य रखें। हर दिन कुछ समय स्क्रीन फ्री निकालें। परिवार से बात करें, दोस्तों से मिलें, किताब पढ़ें और धूप में टहलें। कुछ ही समय में फर्क महसूस होगा—नींद बेहतर होगी, तनाव कम होगा और रिश्तों में अपनापन लौटेगा।

जिंदगी स्क्रीन के चार इंच में नहीं है। जिंदगी खुले आसमान में, हरे पेड़ों में, दोस्तों की हंसी में और परिवार की बातों में है। अगर हमने आज ध्यान नहीं दिया तो कल बहुत देर हो सकती है। इसलिए स्क्रीन को लत को जिंदगी पर भारी पत होने दीजिए। स्क्रीन का उपयोग कीजिए, उपयोग होने मत दीजिए।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

लिकिंग से लापता लोगों को जल्दी खोजा जा सकता है। साथ ही शेल्टर होम की संख्या भी बढ़ानी होगी, ताकि मदद मांगने वाले हर व्यक्ति को तुरंत सहारा मिल सके।

इस अभियान ने पुलिस की छवि को भी बदला है। अक्सर लोग पुलिस को केवल चलाने कानूने और अपराध रोकने वाली मशीन समझते हैं, पर ऑपरेशन हमदर्द ने दिखाया कि वर्दी के पीछे भी एक दिल होता है, जो इंसानियत की पुकार सुनता है। जब एक जवान एक बेसहारा बुजुर्ग को अपने हाथों से खाना खिलाता है, जब एक महिला अधिकारी एक भटकी हुई लड़की को सहारा देकर उसके घर भेजती है, तो वह केवल ड्यूटी नहीं होती, वह मानवता होती है और यही मानवता समाज को जोड़कर रखती है।

आगे की राह भी चुनौतीपूर्ण है, क्योंकि स्टेशनों पर बेसहारा लोगों की संख्या कम नहीं है। हर दिन नए लोग आते हैं और पुराने लोग निकल जाते हैं। इसलिए जरूरी है कि इस अभियान को एक आंदोलन का रूप दिया जाए। रेलवे प्रशासन, राज्य सरकार, सामाजिक संगठन और आम जनता सभी को मिलकर काम करना होगा, ताकि कोई भी व्यक्ति स्टेशन पर भूखा न सोए, कोई भी बीमार व्यक्ति बिना इलाज के न रहे और कोई भी बच्चा अपने परिवार से दूर न भटके।

ऑपरेशन हमदर्द ने यह साबित कर दिया है कि अगर नीयत साफ हो और मेहनत सच्ची हो, तो बड़े से बड़े बदलाव लाए जा सकते हैं। 2057 लोगों तक मदद पहुंचाना अपने आप में एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। यह आंकड़ा उन 159 परिवारों की खुशी का प्रतीक है, जो अपने अपनों से फिर मिले, उन 39 लोगों को मिली उम्मीद का प्रतीक है, जिन्हें अब रहने की जगह मिली और उन 1790 लोगों की सीख का प्रतीक है, जिन्हें समझाकर घर भेजा गया। अब जरूरत है कि इस पहल को आगे बढ़ाया जाए और इसे एक स्थायी व्यवस्था का रूप दिया जाए, ताकि मध्य प्रदेश के रेलवे स्टेशन समझाचुप सफर की शुरुआत और मंजिल दोनों बन सकें, न कि बेसहारों की अंतिम जगह।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

अस्पतालों में बढ़ा कुपोषण का खतरा : बच्चों में छिपा कुपोषण, 50 प्रतिशत में विटामिन डी की कमी, धूप से दूरी और जंक फूड बनी बड़ी वजह

गली-मोहल्ले में दौड़ते थे, लेकिन अब सुबह से शाम तक घर, स्कूल और कोचिंग तक का सफर गाड़ी या बंद कमरे में होता है। माता-पिता का कहना है कि प्रदूषण और सुरक्षा के डर से वे बच्चों को बाहर नहीं भेजते। साथ ही मोबाइल, टीवी और ऑनलाइन क्लास ने बच्चों को कमरे तक सीमित कर दिया है। डॉक्टर बताते हैं कि विटामिन डी का सबसे बड़ा स्रोत सूरज की रोशनी है। शरीर धूप से ही विटामिन डी बनाता है, जो हड्डियों और इम्यूनिटी के लिए जरूरी है। जब धूप ही नहीं मिलेगी तो कमी होना स्वाभाविक है।

खानपान में भी बदलाव आया है। पहले घर का बना खाना, दाल, रोटी, हरी सब्जी और दूध-दही बच्चों की थाली का हिस्सा था, लेकिन अब जगह जंक फूड, पैकेट फूड और फास्ट फूड ने ले ली है। बच्चे चिप्स, कोल्ड ड्रिंक, बर्गर और चॉकलेट को ज्यादा पसंद कर रहे हैं। इनमें कैलोरी तो होती है, लेकिन पोषक तत्व नहीं होते। डॉक्टर पीयूष पंचाल का कहना है कि बच्चे बाहर से कैलोरी भरपूर खाना खा रहे हैं, लेकिन अंदर से कुपोषित हो रहे हैं।

आयरन, फोलेट, प्रोटीन और विटामिन बी12 की कमी इसी वजह से बढ़ रही है। लगातार जंक फूड खाने से बच्चे का वजन बढ़ सकता है, लेकिन शरीर कमजोर रहता है। इसे ही छिपा



कुपोषण कहते हैं। शहरी जीवन की भागदौड़

भी इस समस्या को बढ़ा रही है। दोनों माता-पिता नौकरी करते हैं, इसलिए समय की कमी के कारण घर में खाना बनाने की जगह रेडीमेड

और बाहर का खाना ज्यादा आता है। स्कूल में भी टिफिन में अक्सर पराठे के साथ चिप्स या बिस्किट दिए जाते हैं। आंगनबाड़ी और मिड-डे मील जैसी योजनाएं ग्रामीण और सरकारी

स्कूलों तक सीमित हैं। ग्राइवेट स्कूलों के बच्चे इन योजनाओं से बाहर हैं। नतीजा यह है कि अमीर और गरीब दोनों वर्ग के बच्चे पोषण की कमी से जूझ रहे हैं। अंतर सिर्फ इतना है कि एक वर्ग में मोटापे के साथ कुपोषण है और दूसरे में दुबलापन।

अगर समय रहते इस पर ध्यान नहीं दिया गया तो आने वाले समय में बच्चों में हड्डियों की कमजोरी, थकान, बार-बार बीमार पड़ना और सीखने की क्षमता में गिरावट जैसी समस्याएं बढ़ जाएंगी। विटामिन डी की कमी से रिकेट्स और हड्डियों का टेढ़ापन हो सकता है। आयरन की कमी से एनीमिया और कमजोरी आती है। बी12 की कमी से याददाश्त और एकाग्रता पर असर पड़ता है। स्कूलों में शिक्षक भी शिकायत कर रहे हैं कि बच्चे क्लास में जल्दी थक जाते हैं और ध्यान नहीं लगा पाते। इसका सीधा असर पढ़ाई पर पड़ रहा है।

इस समस्या से निपटने के लिए डॉक्टरों ने कुछ जरूरी सुझाव दिए हैं। सबसे पहले बच्चों को रोजाना कम से कम 20 से 30 मिनट धूप में भेजा जाए। सुबह 9 से 11 बजे तक की धूप सबसे अच्छी मानी जाती है। दूसरा, घर के खाने को प्राथमिकता दी जाए। टिफिन में हरी सब्जी, दाल, अंडा, दूध और फल शामिल

किए जाएं। तीसरा, जंक फूड और पैकेट बंद चीजों को हफ्ते में एक बार तक सीमित किया जाए। चौथा, साल में एक बार बच्चों का हेल्थ चेकअप और खुन की जांच कराई जाए, ताकि कमी का पता समय पर चल सके। स्कूलों को भी चाहिए कि वे खेल का पीरियड बढ़ाएं और बच्चों की धूप में एक्सपोजर कराएं।

सरकार और समाज दोनों की जिम्मेदारी है। आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं को शहरी बस्तियों में भी सक्रिय करना होगा। स्कूलों में पोषण शिक्षा को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाना होगा। मीडिया के जरिए माता-पिता को जागरूक करना होगा कि महंगा खाना ही अच्छा खाना नहीं होता, बल्कि संतुलित खाना जरूरी है। साथ ही फूड कंपनियों पर भी नियम सख्त होने चाहिए, जो बच्चों को लुभाने वाले विज्ञापन दिखाती हैं और पोषक तत्वों के नाम पर केवल शक्कर और नमक बेचती हैं। अस्पतालों में बढ़ रहे कुपोषण के मामले एक चेतावनी हैं कि विकास और सुविधा के नाम पर हमने बच्चों की बुनियादी जरूरतों को नजरअंदाज कर दिया है। तकनीक और सुविधाएं अच्छी हैं, लेकिन अगर बच्चा ही कमजोर होगा तो देश का भविष्य कैसे मजबूत होगा? 50 प्रतिशत बच्चों में विटामिन डी की कमी यह बताती है कि समस्या बहुत बड़ी है, लेकिन समाधान भी हमारे हाथ में है। थोड़ी सी दिनचर्या में बदलाव, थोड़ी सी जागरूकता और थोड़ा सा समय बच्चों को दे दिया जाए तो इस छिपे हुए कुपोषण को हराया जा सकता है। अन्यथा आने वाली पीढ़ी कद में तो लंबी होगी, लेकिन अंदर से खोखली रह जाएगी।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)